अध्याय नौ : उपनिवेशवाद और देहात (सरकारी अभिलेखों का अध्ययन)

बंगाल और वहाँ के ज़मींदार

बंगाल में औपनिवेशिक शासन स्थापित होने के बाद ग्रामीण समाज को पुनर्व्यवस्थित करने, भूमि संबंधी अधिकारों की नई व्यवस्था तथा एक नई राजस्व प्रणाली स्थापित करने के सबसे पहले प्रयास किए गए।

बर्दवान में की गई नीलामी की एक घटना

1793 में इस्तमरारी बंदोबस्त लागू होने के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने राजस्व की राशि निश्चित कर दी थी। ज़मींदारों द्वारा निश्चित राशि न चुका पाने से उनकी संपदाएँ नीलाम कर दी जाती थीं।

- **बर्दवान के राजा पर राजस्व की भारी रकम बकाया थी, इसलिए 1797 में उसकी संपदाएँ नीलाम की गई।**
- नीलामी में सबसे ऊँची बोली लगाने वाले को संपदाएँ (महाल) बेच दी गई।
- बाद में कलेक्टर को पता चला कि ख़रीददार, राजा के अपने ही नौकर या एजेंट थे जिसने राजा की ओर से ज़मीनों को ख़रीदा था।
- नीलामी में 95% से अधिक बिक्री फ़र्जी थी।

अदा न किए गए राजस्व की समस्या

1770 के दशक तक बार-बार अकाल पड़ने और खेती की पैदावार घटने से बंगाल की ग्रामीण अर्थव्यवस्था संकट से गुजर रही थी।

- अधिकारियों का सोचना था कृषि में निवेश को प्रोत्साहन देने से खेती, व्यापार और राज्य के राजस्व संसाधन विकसित हो सकेंगे।
- इसके लिए राजस्व माँग की दरों को स्थाई रूप से तय किया जाएगा।

- ऐसा करने से कंपनी को राजस्व की नियमित प्राप्ति होगी और उद्यमकर्ता भी अपने पूँजी-निवेश से लाभ कमा पाएँगे।
- अधिकारियों को आशा थी कि इस प्रक्रिया से छोटे किसानों और धनी भूस्वामियों का वर्ग उत्पन्न होगा। जिसके पास कृषि में सुधार करने के लिए पूँजी और उद्यम दोनों होंगे।
- यह वर्ग ब्रिटिश शासन से पालन-पोषण तथा प्रोत्साहन पाकर कंपनी के प्रति वफ़ादार बना रहेगा।

➡ बंगाल के राजाओं और ताल्लुकदारों के साथ इस्तमरारी बंदोबस्त लागू कर ज़मींदारों के रूप में वर्गीकृत किया गया। जिन्हें सदा के लिए एक निश्चित राजस्व अदा करना था।

- यह ज़मींदार गाँव में भू-स्वामी नहीं बल्कि राज्य का राजस्व समाहर्ता (संग्राहक) मात्र था।
- ज़मींदारों के नीचे अनेक (कभी-कभी 400 तक) गाँव होते थे।
- एक ज़मींदारी के भीतर आने वाले गाँव मिलाकर एक राजस्व संपदा थे।
- कंपनी इस पर कुल माँग निर्धारित करती थी।
- उसके बाद ज़मींदार निर्धारित करता था कि भिन्न-भिन्न गाँवों से राजस्व की कितनी-कितनी माँग पूरी करनी होगी।
- फिर वह गाँवों से राजस्व राशि इकट्ठी करता था।

Study Learning Notes

राजस्व राशि के भुगतान में ज़मींदार क्यों चूक करते थे?

इस्तमरारी बंदोबस्त के बाद, कुछ प्रारंभिक दशकों में ज़मींदारों द्वारा राजस्व अदा करने में असफलता के कई कारण थे:—

1. माँगें बहुत ऊँची थीं। आगे चलकर कीमतों में बढ़ोतरी होने और खेती का विस्तार होने से आय में वृद्धि हो जाने पर भी कंपनी वृद्धि के हिस्से का दावा नहीं कर सकेगी। इसलिए हानि को कम से कम रखने के लिए कंपनी ने राजस्व माँग को ऊँचे स्तर पर रखा।

2. जब ऊँची माँग लागू की गई तब कृषि की उपज की कीमतें नीची थीं। जिस कारण रैयत के लिए ज़मींदारों को देय राशियाँ चुकाना मुश्किल था। ज़मीदारों द्वारा किसानों से राजस्व इकट्ठा नहीं कर पाने के कारण वह कंपनी को निर्धारित राजस्व राशि अदा नहीं कर पा रहे थे।

3. राजस्व असमान था, फ़सल अच्छी हो या ख़राब राजस्व का ठीक समय पर भुगतान ज़रूरी था। सूर्यास्त विधि (कानून) के अनुसार, निश्चित तारीख़ को सूर्य अस्त होने तक भुगतान न करने पर ज़मींदारी को नीलाम किया जा सकता था।

4. इस्तमरारी बंदोबस्त ने प्रारंभ में ज़मींदार की शक्ति को रैयत से राजस्व इकट्ठा करने और अपनी ज़मींदारी का प्रबंध करने तक ही सीमित कर दिया था।

➡ कंपनी ज़मींदारों को महत्व देने के साथ उन्हें नियंत्रित तथा विनियमित करना, उनकी सत्ता को अपने वश में रखना और उनकी स्वायत्तता को सीमित करना चाहती थी।

- फलस्वरुप ज़मींदारों के सैन्य-टुकड़ियों को भंग कर दिया गया।
- सीमा शुल्क समाप्त कर दिया गया
- उनकी कचहरियों को कंपनी द्वारा नियुक्त कलेक्टर की देखरेख में रखा गया।
- उनसे स्थानीय न्याय और पुलिस की व्यवस्था करने की शक्ति छीन ली गई।

समय के साथ, कलेक्टर का कार्यालय सत्ता के एक विकल्पी केंद्र के रूप में उभर आया और ज़मींदार के अधिकार को पूरी तरह सीमित एवं प्रतिबंधित कर दिया गया।

studylearningnotes.com

जोतदारों का उदय

18वीं सदी के अंत में ज़मींदार संकट की स्थिति से गुजर रहे थे, पर धनी किसानों के कुछ समूह (जोतदार) गाँवों में अपनी स्थिति मजबूत कर रहे थे। **19वीं सदी के शुरुआती वर्षों तक जोतदारों** ने ज़मीन के बड़े-बड़े रकबे (कई हज़ार एकड़ में फैले) अर्जित कर लिए थे।

- स्थानीय व्यापार और साहूकार के कारोबार पर नियंत्रण होने के करण वे उस क्षेत्र की ग़रीब काश्तकारों पर व्यापक शक्ति का प्रयोग करते थे।
- **उनकी ज़मीन का बड़ा भाग बटाईदारों (अधियारों या बरगादारों) के माध्यम से जोता जाता था।**
- जो खुद अपने हल लाते, खेत में मेहनत करते, फ़सल के बाद उपज का आधा हिस्सा जोतदारों को देते थे।
- **गाँवों में जोतदार, ज़मींदारों से अधिक शक्तिशाली होते थे। ज़मींदार शहरी इलाक़ों में, जबकि जोतदार गाँवों में रहते थे।**
- वे ग़रीब ग्रामवासियों के काफ़ी बड़े वर्ग पर अपने नियंत्रण का प्रयोग करते थे।
- **ज़मींदारों द्वारा गाँव की जमा (लगान) को बढ़ाने के लिए प्रयत्नों का वे घोर प्रतिरोध करते थे।**
- उन पर निर्भर रैयतों को वे अपने पक्ष में एकजुट रखते थे। ज़मींदार को राजस्व के भुगतान में जान-बूझकर देरी कराते थे।
- राजस्व का भुगतान न किए जाने पर ज़मींदार की ज़मींदारी को अकसर जोतदार ही ख़रीद लेते थे।

उत्तरी बंगाल में जोतदार सबसे अधिक शक्तिशाली थे। कुछ जगहों पर उन्हें "हवलदार" और अन्य स्थानों पर "गाँटीदार या मंडल" कहते थे। उनके उदय से ज़मींदारों के अधिकार कमज़ोर पड़े।

Study Learning Notes

https://studylearningnotes.com

ज़मींदारों की ओर से प्रतिरोध

राजस्व की अधिक माँग और भू-संपदा की नीलामी की समस्या से निपटने के लिए ज़मींदारों ने कई रास्ते निकाल लिए।

1. बर्दवान के राजा ने अपनी ज़मींदारी का कुछ हिस्सा अपनी माता को दे दिया क्योंकि कंपनी के अनुसार स्त्रियों की संपत्ति को नहीं छीना जाता था।
2. उसके एजेंटों द्वारा नीलामी की प्रक्रिया में जोड़-तोड़ किया गया।

- कंपनी की राजस्व माँग को जान-बूझकर रोकने से भुगतान न की गई बक़ाया राशि बढ़ती गई।
- भूसंपदा को नीलाम करने पर ज़मींदार के आदमियों ने ही ऊँची बोलियाँ लगाकर ख़रीद लिया।
- ख़रीद की राशि अदा करने से इनकार करने पर भूसंपदा को फिर बेचना पड़ा।
- एक बार फिर ज़मींदार के एजेंटों ने ही उसे ख़रीद लिया।
- फिर से ख़रीद की रक़म अदा नहीं की गई इसलिए एक बार फिर नीलामी करनी पड़ी।
- यह प्रक्रिया बार-बार दोहराने से अंत में किसी के भी बोली न लगाने पर संपदा को नीची क़ीमत पर ज़मींदार को ही बेचना पड़ा।

1793 से 1801 के बीच, बंगाल की चार बड़ी ज़मींदारियों ने अनेक बेनामी ख़रीददारियाँ कीं। जिनसे 30 लाख रुपए की प्राप्ति हुई। नीलामियों में की गई कुल बिक्रियों में से 15% सौदे नक़ली थे।

➡ नए ख़रीददार द्वारा नीलामी में ज़मीन ख़रीदने पर पुराने ज़मींदार के "लठियाल" उन लोगों को मार पीटकर भगा देते थे।

- कभी-कभी पुराने रैयत नए ख़रीददार के लोगों को ज़मीन में घुसने नहीं देते थे।
- वे अपने आपको पुराने ज़मींदार से जुड़ा हुआ महसूस करते, उसी के प्रति वफ़ादार बने रहते, और मानते थे कि पुराना ज़मींदार ही उनका अन्नदाता तथा वह उसकी प्रजा है।

https://studylearningnotes.com

➡ 19वीं सदी के प्रारंभ में कीमतों में मंदी की स्थिति समाप्त होने से ज़मींदारों ने अपनी सत्ता को सुदृढ़ बना लिया।

- राजस्व के भुगतान संबंधी नियमों को भी कुछ लचीला बनने पर गाँवों में उनकी सत्ता और मज़बूत हो गई।
- लेकिन 1930 के दशक की घोर मंदी की हालत में ज़मींदारों का भट्टा बैठ गया और जोतदारों ने देहात में अपने पाँव मज़बूत कर लिए।

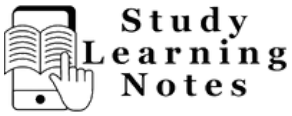

पाँचवीं रिपोर्ट

1813 में ब्रिटिश संसद में पाँचवीं रिपोर्ट पेश की गई थी, जो भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशासन तथा क्रियाकलापों के विषय में थी।

- यह रिपोर्ट 1,002 पृष्ठों में थी। इसके 800 से अधिक पृष्ठ परिशिष्टों के थे जिनमें ज़मींदारों और रैयतों की अर्जियाँ,
- भिन्न-भिन्न जिलों के कलेक्टरों की रिपोर्टें,
- राजस्व विवरणियों से संबंधित सांख्यिकीय तालिकाएँ,
- अधिकारियों द्वारा बंगाल और मद्रास के राजस्व तथा न्यायिक प्रशासन पर लिखित टिप्पणियाँ शामिल की गई थीं।

पाँचवीं रिपोर्ट में उपलब्ध साक्ष्य बहुमूल्य हैं लेकिन आधुनिक शोधों से पता चलता है कि इसमें दिए गए तर्कों और साक्ष्यों को बिना किसी आलोचना के स्वीकार नहीं किया जा सकता।

➡ शोधकर्ताओं ने ग्रामीण बंगाल में औपनिवेशिक शासन के बारे में लिखने के लिए बंगाल के अनेक ज़मींदारों के अभिलेखागारों तथा ज़िलों के स्थानीय अभिलेखों की सावधानीपूर्वक जाँच की है।

- उनसे पता चलता है कि पाँचवीं रिपोर्ट लिखने वाले कंपनी के कुप्रशासन की आलोचना करने पर तुले थे।
- इसलिए उसमें परंपरागत ज़मींदारी के पतन का वर्णन बढ़ा-चढ़ा कर किया गया है।

कुदाल और हल

राजमहल की पहाड़ियों में

19वीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में, फ़्रासिस बुकानन ने राजमहल की पहाड़ियों का दौरा किया था। उसके वर्णन के अनुसार ये पहाड़ियाँ अभेद्य और ख़तरनाक इलाक़ा था जहाँ बहुत कम यात्री जाने की हिम्मत करते थे।

- वहाँ उसने निवासियों के व्यवहार को शत्रुतापूर्ण पाया। वे लोग कंपनी के अधिकारियों का प्रति आशंकित थे और उनसे बातचीत करने को तैयार नहीं थे।

➡ इतिहासकारों ने उनके लंबे इतिहास को जानने के लिए बुकानन की डायरी के अलावा अन्य रिकॉर्डों की भी मदद ली है।

- वे पहाड़ी लोग राजमहल के पहाड़ियों के इर्द-गिर्द रहा करते थे।
- जंगल की उपज और झूम खेती से अपना गुजर-बसर करते थे।

झूम खेती

1. जंगल के छोटे-से हिस्से में झाड़ियों को काटकर और घास-फूँस को जलाकर ज़मीन साफ़ कर लेते थे।
2. राख की पोटाश से उपजाऊ बनी ज़मीन को कुदाल से थोड़ा खोद कर बीज बो देते थे।
3. वे अपने खाने के लिए तरह -तरह की दालें और ज्वार-बाजरा उगाते थे।
4. कुछ वर्षों तक खेती करने बाद, ज़मीन की उर्वरता आने तक कुछ वर्षों के लिए परती छोड़ कर नए इलाक़े में चले जाते थे।

➡ वे खाने के लिए महुआ के फूल इकट्ठे करते, बेचने के लिए रेशम के कोया तथा राल और काठकोयला बनाने के लिए लकड़ियाँ इकट्ठी करते थे।

- परती ज़मीन पर उगी घास-फूँस पशुओं के लिए चरागाह बन जाती थी।
- वे इमली के पेड़ के नीचे अपनी झोपड़ियों में रहते और आम के पेड़ों की छाँह में आराम करते थे।

- यह भूमि उनकी पहचान और जीवन का आधार थी। इसलिए वे बाहरी लोगों के प्रवेश का प्रतिरोध करते थे।
- इस प्रकार पहाड़िया लोगों की ज़िंदगी जंगल से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई थी।

➡ उनके मुखिया लोग अपने समूह में एकता बनाए रखते, आपसी लड़ाई-झगड़े निपटा देते और अन्य जनजातियों तथा मैदानी लोगों के साथ लड़ाई होने पर अपनी जनजाति का नेतृत्व करते थे।

- पहाड़िया लोग अभाव (अकाल) के वर्षों में जीवित रहने के लिए और अपनी ताक़त दिखाने के लिए एक स्थान पर बसे किसानों पर आक्रमण करते रहते थे।
- मैदानों में रहने वाले ज़मींदारों को इन पहाड़ी मुखियाओं को नियमित रूप से ख़िराज देकर उनसे शांति ख़रीदनी पड़ती थी।
- इसी प्रकार, व्यापारियों को भी रास्तों का इस्तेमाल करने के लिए पथकर देना पड़ता था। इससे वे व्यापारियों की रक्षा करते और आश्वासन देते कि उनका माल कोई नहीं लूटेगा।

➡ 18वीं सदी के अंतिम दशकों में अंग्रेज़ों ने जंगलों की कटाई-सफ़ाई को प्रोत्साहित किया और ज़मींदारों तथा जोतदारों ने परती भूमि को धान की खेती में बदल दिया।

- अंग्रेज़ों ने कृषि का विस्तार राजस्व के स्रोतों में वृद्धि, निर्यात के लिए फ़सल पैदा करने और एक स्थायी सुव्यवस्थित समाज की स्थापना के लिए किया था।
- वे जंगलों को उजाड़ और वनवासियों को असभ्य, बर्बर, उपद्रवी और क्रूर समझते थे जिन पर शासन करना उनके लिए कठिन था।
- कृषि का विस्तार होने से जंगलों तथा चरागाहों का क्षेत्र संकुचित हो गया।
- जिस कारण पहाड़ी लोगों ने बसे हुए गाँवों पर पहले से अधिक हमले करने लगे और ग्रामवासियों से अनाज तथा पशु छीनकर ले जाने लगे।

➡ **1770 के दशक में** ब्रिटिश अधिकारियों ने इन पहाड़ियों को निर्मूल कर देने की क्रूर नीति अपना ली और उनका शिकार और संहार करने लगे।
1780 के दशक में भागलपुर के कलेक्टर ऑगस्टस क्लीवलैंड की शांति नीति के अनुसार पहाड़िया मुखियाओं को एक वार्षिक भत्ता दिया जाना था।

- बदले में उन्हें अपने आदमियों का चाल-चलन ठीक रखने, बस्तियों में व्यवस्था बनाने और लोगों को अनुशासन में रखने की जिम्मेदारी लेनी थी।
- लेकिन बहुत से पहाड़िया मुखियाओं ने भत्ता लेने से मना कर दिया जिन्होंने स्वीकार किया वे अपने समुदाय में अपनी सत्ता खो बैठे।

➡ **इन्हीं दिनों संथाल लोगों का आगमन हुआ जो जंगलों का सफ़ाया करते , इमारती लकड़ी को काटते, ज़मीन जोतते और चावल व कपास उगाते हुए उस इलाक़े में बड़ी संख्या में चले आ रहे थे।**

- उन्होंने निचली पहाड़ियों पर अपना क़ब्ज़ा जमा लिया इसलिए पहाड़ियों को राजमहल की पहाड़ियों में और भीतर की ओर हटना पड़ा।
- पहाड़िया लोगों के लिए कुदाल और संथालों के लिए हल जीवन का प्रतीक माना गया।

Study Learning Notes

संथाल : अगुआ बाशिंदे

संथाल 1780 के दशक के आस-पास बंगाल में आने लगे थे। ज़मींदार लोग खेती की नई भूमि तैयार करने और खेती का विस्तार करने के लिए उन्हें भाड़े पर रखते थे।

- जब ब्रिटिश अधिकारी पहाड़ियों को अपने बस में करके स्थायी कृषि के लिए बसाने में असफल हुए तो उन्होंने संथालों को ज़मीनें देकर राजमहल की तलहटी में बसने के लिए तैयार कर लिया।
- **1832 तक, ज़मीन के काफ़ी बड़े इलाक़े को दामिन-इ-कोह के रूप में सीमांकित कर दिया गया।**

- संथालों को इस इलाके के भीतर रहकर खेती करना और स्थायी किसान बनना था।
- उन्हें दी गई भूमि के अनुदान-पत्र में शर्त थी कि भूमि के कम से कम दसवें भाग को साफ़ करके 10 वर्षों के भीतर जोतना था।

➡ इस पूरे क्षेत्र का सर्वेक्षण करके उसका नक्शा तैयार किया गया। इसके चारों ओर खंबे गाड़कर परिसीमा निर्धारित की गई और इसे स्थायी कृषकों और पहाड़िया लोगों से अलग कर दिया गया।

- संथालों के गाँवों, जो 1838 में 40 थे। 1851 तक 1,473 हो गए और संथालों की जनसंख्या 3,000 से 82,000 से भी अधिक हो गई।
- खेती का विस्तार होने से कंपनी की तिजोरियों में राजस्व राशि में वृद्धि होती गई।
- पहाड़ियों को निचली पहाड़ियों तथा घाटियों में आने से रोककर ऊपरी पहाड़ियों के चट्टानी, अधिक बंजर इलाकों तथा भीतरी शुष्क भागों तक सीमित कर दिया गया।
- इससे झूम खेती और शिकारी पहाड़ियों के रहन-सहन और जीवन पर बहुत बुरा असर पड़ा जिससे आगे चलकर वे गरीब हो गए।

➡ इधर संथाल लोग खानबदोश ज़िंदगी छोड़कर एक जगह बस गए। वे बाज़ार के लिए कई तरह के वाणिज्यिक फ़सलों की खेती करने लगे और व्यापारियों तथा साहूकारों के साथ लेन-देन भी करने लगे।

- किंतु, संथालों ने जल्द ही समझ लिया कि खेती वाली भूमि उनके हाथों से निकलती जा रही है।
- भूमि पर सरकार भारी कर लग रही थी
- साहूकार लोग ऊँची दर पर ब्याज लग रहे थे और कर्ज़ अदा न करने पर ज़मीन पर ही कब्ज़ा कर रहे थे।
- ज़मींदार लोग दामिन इलाके पर अपने नियंत्रण का दावा कर रहे थे।

Study Learning Notes

1855-56 में संथालों ने ज़मींदारों, साहूकारों और औपनिवेशिक राज के ख़िलाफ़ विद्रोह कर दिया। इसके बाद संथाल परगने (5,500 वर्गमील का क्षेत्र भागलपुर और बीरभूम जिलों में) का निर्माण किया गया।

बुकानन का विवरण

जब कंपनी ने अपनी शक्ति को सुदृढ़ बना लिया और अपने व्यवसाय का विकास कर लिया तो वह उन प्राकृतिक साधनों की खोज में जुट गई जिन पर कब्जा करके उनका मनचाहा उपयोग कर सकती थी।

- उसने परिदृश्यों तथा राजस्व स्रोतों का सर्वेक्षण किया, खोज यात्राएँ आयोजित कीं और जानकारी इकट्ठी करने के लिए अपने भूविज्ञानियों, भूगोलवेत्ताओं, वनस्पति विज्ञानियों और चिकित्सकों को भेजा।

➡ इनमें से एक बुकानन था। वह जहाँ भी गया उसने पत्थरों, चट्टानों, भूमि के भिन्न-भिन्न स्तरों और परतों को वाणिज्यिक दृष्टि से खोजने की कोशिश की।

- उसने लौह खनिज और अबरक, ग्रेनाइट और साल्टपीटर से संबंधित सभी स्थानों का पता लगाया।
- सावधानीपूर्वक नमक बनाने और कच्चा लोहा निकालने की स्थानीय पद्धतियों का निरीक्षण किया।
- भूदृश्य के बारे में लिखते समय बुकानन भूदृश्य कैसा है उसमें फेरबदल करके उसे अधिक उत्पादक कैसे बनाया जाए, कौन-सी फ़सलें, पेड़ उगाए जा सकते हैं भी बताता था।
- वह अनिवार्य रूप से वनवासियों की जीवन शैली का आलोचक था और महसूस करता था कि वनों को कृषि भूमि में बदलना ही होगा।

देहात में विद्रोह (बंबई दक्कन)

19वीं सदी के दौरान, भारत के विभिन्न प्रांतो के किसानों ने साहूकारों और अनाज के व्यापारियों के विरुद्ध अनेक विद्रोह किए।

लेखा बहियाँ जला दी गई

12 मई 1875 को पुणे जिले के गाँव सूपा (विपणन केंद्र जहाँ अनेक व्यापारी और साहूकार रहते थे) में आसपास के ग्रामीण इलाकों के रैयतों ने इकट्ठे होकर साहूकारों से उनके बही-खातों और ऋणबंधों की माँग करते हुए उन पर हमला कर दिया।

- उनके बही-खाते जला दिए, अनाज की दुकानें लूट लीं और कुछ साहूकारों के घरों को भी आग लगा दी।
- पूना से यह विद्रोह अहमदनगर में फैल गया। अगले 2 महीनों में 6,500 वर्ग किलोमीटर का इलाका और 30 से अधिक गाँव इनकी चपेट में आ गए।

सब जगह विद्रोह का स्वरूप एकसमान था:—

- साहूकारों पर हमला करना
- बही-खाते जलाना
- ऋणबंध नष्ट कर देना

➡ किसानों के हमले से घबराकर साहूकार गाँव छोड़कर भाग गए, अधिकतर अपनी संपत्ति और धन-दौलत भी वहीं छोड़ गए।

- ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा विद्रोही किसानों के गाँवों में पुलिस थाने स्थापित किए गए और सेनाएँ बुलाई गई।
- 95 व्यक्तियों को गिरफ़्तार किया गया, उनमें से बहुतों को दंडित किया गया। फिर भी देहात को काबू करने में कई महीने लग गए।

Study Learning Notes

https://studylearningnotes.com

एक नयी राजस्व प्रणाली

इस्तमरारी बंदोबस्त को बंगाल से बाहर लागू न करने के कारण ये थे:—

- 1810 के बाद खेती की क़ीमतें बढ़ने से उपज के मूल्य में भी वृद्धि हुई। इससे बंगाल के ज़मींदारों की आमदनी में इज़ाफ़ा हुआ पर औपनिवेशिक सरकार इसमें अपने हिस्से का दावा नहीं कर सकती थी।
- डेविड रिकार्डो के विचारों के अनुसार बंगाल में ज़मींदार लोग किरायाजीवियों के रूप में बदल गए क्योंकि उन्होंने अपनी ज़मीनें पट्टे पर दे दीं और किराए की आमदनी पर निर्भर रहने लगे।

➡ इसलिए ब्रिटिश अधिकारियों ने एक भिन्न राजस्व प्रणाली अपनाई। बम्बई दक्कन में लागू की गई राजस्व प्रणाली को रैयतवाड़ी कहा जाता है। इस प्रणाली के अंतर्गत राजस्व की राशि सीधे रैयत के साथ तय की जाती थी।

- विभिन्न प्रकार की भूमि से होने वाली औसत आय का अनुमान लगाकर, रैयत की राजस्व अदा करने की क्षमता का आकलन करके सरकार के हिस्से के रूप में उनका एक अनुपात निश्चित कर दिया जाता था।
- हर 30 साल बाद ज़मीनों का फिर से सर्वेक्षण किया जाता और राजस्व की दर उसके अनुसार बढ़ा दी जाती थी। इसलिए राजस्व की माँग अब चिरस्थायी नहीं रही थी।

Study Learning Notes

राजस्व की माँग और किसान का क़र्ज़

- राजस्व की माँग इतनी अधिक थी कि बहुत से स्थानों पर किसान अपने गाँव छोड़कर नए क्षेत्रों में चले गए।
- वर्षा न होने और फ़सल खराब होने पर किसानों के लिए राजस्व अदा करना असंभव होता था।
- फिर भी राजस्व इकट्ठा करने वाले प्रभारी कलेक्टर कठोरतापूर्वक राजस्व वसूलते थे।

- राजस्व न देने पर किसानों की फ़सलें ज़ब्त कर ली जाती थी और समूचे गाँव पर जुर्माना ठोक दिया जाता था।
- 1832 के बाद कृषि उत्पादों की क़ीमतों में तेज़ी से गिरावट आने के कारण किसानों की आय में और भी गिरावट आई।
- 1832-34 के वर्षों में देहाती इलाकों में अकाल आने से एक-तिहाई पशुधन और आधी मानव जनसंख्या भी मौत के मुँह में चली गई।
- बचे हुए लोगों के पास संकट का सामना करने के लिए खाद्यान नहीं था। राजस्व की बकाया राशियाँ बढ़ती गई।

➡ राजस्व की राशियों को चुकाने के लिए किसान ऋणदाता से पैसा उधार लेने लगे। लेकिन एक बार ऋण लेने के बाद उसे वापस करना कठिन हो गया। कर्ज़ बढ़ता गया, उधार की राशियाँ बकाया रहती गईं और ऋणदाताओं पर किसानों की निर्भरता बढ़ती गई।

- अपनी रोज़मर्रा की ज़रूरतों और अपने उत्पादन के खर्च को पूरा करने के लिए कर्ज़ लेने पर स्थिति और भी बिगड़ गई।

➡ 1840 के दशक में अधिकारियों ने किसानों की हालत को देखते हुए राजस्व संबंधी माँग को कुछ हल्का किया। 1845 के बाद कृषि उत्पादों की कीमतें धीरे-धीरे बढ़ती गई।

- किसान अपने कृषि क्षेत्र बढ़ाने के लिए नए-नए इलाकों में जा रहे थे और गोचर भूमियों को कृषि भूमि में बदल रहे थे।
- लेकिन किसानों को अपनी खेती का विस्तार करने के लिए अधिक हल-बैल चाहिए थे।
- बीज और ज़मीन खरीदने के लिए पैसों की ज़रूरत थी।
- इन सब कामों के लिए उन्हें एक बार फिर पैसा उधार लेने के लिए ऋणदाताओं के पास जाना पड़ा।

Study Learning Notes

फिर कपास में तेज़ी आई

1857 में, ब्रिटेन में कपास आपूर्ति संघ की स्थापना हुई और 1859 में मैनचेस्टर कॉटन कंपनी बनाई गई। उनका उद्देश्य "दुनिया भर के हर भाग में कपास के उत्पादन को प्रोत्साहित करना था जिससे उनकी कंपनी का विकास हो सके।"

- 1860 के दशक से पहले, ब्रिटेन में कपास का तीन-चौथाई भाग अमेरिका से आता था।
- 1861 में अमेरिकी गृहयुद्ध होने से अमेरिका से आने वाला कपास 3% से भी कम रह गया।
- भारत की भूमि और जलवायु दोनों ही कपास की खेती के लिए उपयुक्त थे और सस्ता श्रम भी उपलब्ध था।
- बम्बई में, कपास के सौदागरों ने कपास की आपूर्ति का आकलन करने और कपास की खेती को आधिकाधिक प्रोत्साहन देने के लिए कपास पैदा करने वाले ज़िलों का दौरा किया।

➡ कपास की कीमतों में उछाल आने पर बम्बई के कपास निर्यातकों ने ब्रिटेन की माँग को पूरा करने के लिए अधिक से अधिक कपास खरीदने का प्रयत्न किया।

- इसके लिए उन्होंने शहरी साहूकारों को अधिक से अधिक अग्रिम राशियाँ दी ताकि वे आगे ग्रामीण ऋणदाताओं को दे, जो उपज को उपलब्ध कराने का वचन देते थे।
- दक्कन के गाँवों के रैयतों को असीमित ऋण मिलने लगा। उन्हें कपास उगाई जाने वाले प्रत्येक एकड़ के लिए 100 रू. अग्रिम राशि मिलने लगी।
- **1862 तक 90% कपास अकेले भारत से ब्रिटेन जाता था।**
- 1860 से 1864 के दौरान कपास उगाने वाले एकड़ों की संख्या दोगुनी हो गई।
- इससे कुछ धनी किसानों को लाभ हुआ लेकिन अधिकांश किसान कर्ज़ के बोझ से और अधिक दब गए।

https://studylearningnotes.com

ऋण का स्त्रोत सूख गया

अमेरिका में गृहयुद्ध समाप्त होने के बाद वहाँ कपास का उत्पादन फिर से चालू हो गया और ब्रिटेन के भारतीय कपास के निर्यात में गिरावट आ गई।

- भारतीय कपास की घटती माँग और कपास की कीमतों में गिरावट देखकर निर्यात व्यापारी और साहूकार ने किसानों को देने वाली अग्रिम राशियाँ रोक दीं और बकाया ऋणों को वापस माँगने लगे।
- फिर से नया बंदोबस्त किया गया। माँग को नाटकीय ढंग से 50 से 100% तक बढ़ा दिया गया।
- एक बार फिर किसानों को ऋणदाता की शरण में जाना पड़ा। लेकिन अबकी बार ऋणदाताओं ने ऋण देने से मना कर दिया।

अन्याय का अनुभव

ऋणदाता द्वारा ऋण देने से मना करने पर रैयत समुदाय के अंदर गुस्सा आ गया। वे इस बात के लिए क्रुद्ध थे कि वे ऋण में डूबे जा रहे हैं और ऋणदाता उन पर तरस नहीं खा रहा है।

- ऋणदाता लोग देहात के प्रथागत मानकों (रूढ़ि रिवाजों) का भी उल्लंघन कर रहे थे।
- सामान्य मानक यह था कि ब्याज मूलधन से अधिक नहीं लिया जाएगा।
- औपनिवेशिक शासन में इस नियम की धज्जियाँ उड़ा दी गईं।
- दक्कन दंगा आयोग द्वारा छानबीन करने पर एक मामले में ऋण दाता ने 100 रू. के मूलधन पर 2,000 से भी अधिक ब्याज लगा रखा था।
- रैयत ऋणदाताओं के द्वारा खातों में धोखाधड़ी करने और कानून को धत्ता बताने की शिकायतें करते थे।

➡ 1859 में अंग्रेज़ों के परिसीमन क़ानून के अनुसार ऋणदाता और रैयत के बीच ऋणपत्र केवल 3 वर्षों के लिए मान्य होंगे।

- किंतु ऋणदाता ने कानून को घुमाकर अपने पक्ष में करके रैयतों से हर तीसरे साल एक नया बंधपत्र भरवाने लगे।
- नए बंधपत्र में न चुकाई गई शेष राशि अर्थात मूलधन और उस पर उत्पन्न तथा इकट्ठा हुई संपूर्ण ब्याज को मूलधन के रूप में दर्ज किया जाता और उस पर नए सिरे से ब्याज लगने लगता था।
- ऋणदाता, ऋण चुकाने पर रैयत को उसकी रसीद देने से मना कर देते, बंधपत्रों में जाली आंकड़े भर देते, किसानों की फसल नीची कीमतों पर लेते और आखिरकार किसानों की धन-संपत्ति पर ही कब्जा कर लेते थे।

➡ तरह-तरह के दस्तावेज़ और बंधपत्र इसी नई अत्याचारपूर्ण प्रणाली के प्रतीक बन गए। समय के साथ, किसानों को समझ आया कि सारी समस्या बंधपत्रों और दस्तावेजों की नई व्यवस्था के कारण ही है।

- बिना बताए दस्तावेज़ों पर हस्ताक्षर या अँगूठे के निशान लगवा लिए जाते थे। मगर वे लाचार थे क्योंकि जीवित रहने के लिए ऋण चाहिए और ऋणदाता कानूनी दस्तावेज़ों के बिना ऋण देने को तैयार नहीं थे।

दक्कन दंगा आयोग

दक्कन में विद्रोह फैलने पर बम्बई की सरकार उसे गंभीरतापूर्वक लेने को तैयार नहीं थी। लेकिन भारत सरकार (1857 विद्रोह से चिंतित) ने बम्बई सरकार पर दबाव डालकर दंगों के कारणों की छानबीन के लिए एक जाँच आयोग बैठाई।

- आयोग ने एक रिपोर्ट तैयार करके 1878 में ब्रिटिश पार्लियामेंट में पेश की गई। इसको दक्कन दंगा रिपोर्ट कहा जाता है।
- आयोग ने दंगा जिलों में जाँच पड़ताल कराई, रैयत वर्गों, साहूकारों और चश्मदीद गवाहों के बयान लिए, भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में राजस्व की दरों, कीमतों और ब्याज के बारे में आंकड़े इकट्ठे किए और जिला कलेक्टरों द्वारा भेजी गई रिपोर्टों का संकलन किया।

- संपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करने के बाद आयोग ने सूचित किया कि सरकारी माँग किसानों के गुस्से की वजह नहीं थी। इसमें सारा दोष ऋणदाताओं या साहूकारों का ही था।

इससे यह स्पष्ट होता है कि औपनिवेशिक सरकार मानने को तैयार नहीं थी कि जनता में असंतोष सरकारी कार्रवाही के कारण उत्पन्न हुआ था।

इस प्रकार, सरकारी रिपोर्टें इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए बहुमूल्य स्रोत होती है लेकिन उन्हें सावधानीपूर्वक पढ़कर समाचारपत्रों, गैर-सरकारी वृत्तांतों, वैधिक अभिलेखों, मौखिक स्रोतों से संकलित साक्ष्य के साथ मिलान करके उसकी विश्वसनीयता की जाँच करनी चाहिए।

Study Learning Notes

काल – रेखा

- **1765 –** इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल की दीवानी प्राप्त की
- **1773 –** ईस्ट इंडिया कंपनी की क्रियाकलापों को विनियमित करने के लिए ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित किया गया
- **1793 –** बंगाल में इस्तमरारी बंदोबस्त
- **1800 का दशक –** संथाल लोग राजमहल की पहाड़ियों में आने लगे और वहाँ बसने लगे
- **1818 –** बम्बई दक्कन में पहला राजस्व बंदोबस्त
- **1820 का दशक –** कृषि की कीमतें गिरने लगीं
- **1840 व 1850 का दशक –** बम्बई दक्कन में कृषि विस्तार की धीमी प्रक्रिया
- **1855-56 –** संथालों की बगावत
- **1861 –** कपास में तेज़ी का समारंभ
- **1875 –** दक्कन के गाँवों में रैयतों ने बग़ावत की

studylearningnotes.com